ॐ नमो ब्रह्मनिरञ्जनाय ।

भगवत्पूज्यपाद-जगद्गुरु श्री १०८ आद्य

शंकराचार्यप्रणीत

वेदान्तस्तोत्रसंग्रह ।

श्रीपूज्यपाद १०८ स्वामीनिरंजनदेव

सरस्वतीकृत भाषानुवाद.

प्रकाशक

श्रीमान् शेट भगवानदास तुळशीदास मोदी,

तुळशी-बिल्डिंग, खेतवाडी, मुंबई.

शेट हंसराज त्रिकमदास, कृष्ण-बिल्डिंग नं० २

परेल, मुंबई.

राजाराम भास्कर पानवलकर, ऑनेस्टी कंपनी,

गिरगांव, मुंबई.

सन १९३२] विना मूल्यम् [सर्व हक्क स्वाधीन.
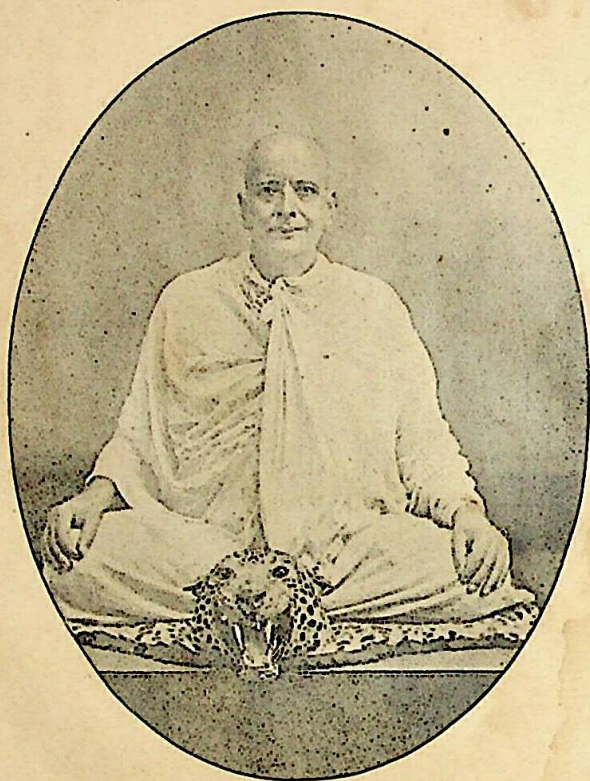
॥ श्री पूज्यपाद स्वामी निरंजनदेव सरस्वती. ॥

स्वामी लक्ष्मीशानन्द. मुमुक्षु भवन काशी

१ श्रीगङ्गाष्टकम्

श्रीमद्भगवत्पूज्यपादाद्यशङ्कराचार्यप्रणीतम्—

भगवति तव तीरे नीरमात्राशनोऽहं
विगतविपयतृष्णः कृष्णमाराधयामि ।
सकलकलुषभङ्गे स्वर्गसोपानसङ्गे
तरलतरतरङ्गे देवि गङ्गे प्रसीद ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—(भगवति) हे सम्पूर्णसम्पत्तिसम्पन्ना भगवती भागीरथी ! (तव तीरे) तुम्हारे तटपर (नीरमात्राशनोऽहं) मैं केवल जलाहार करता हुआ (विगतविपयतृष्णः) विपयभोगकी तृष्णा से रहित होकर (कृष्णं आराधयामि) भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करता हूँ । (सकलकलुष-भङ्गे) हे सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाली, (स्वर्गसोपानसङ्गे) स्वर्ग की सीढ़ी से सम्बन्ध करानेवाली (तरलतरतरङ्गे) अत्यन्त चञ्चल लहरोंवाली तथा (देवि) दिव्यस्वरूपवाली (गङ्गे) माता गङ्गा ! (प्रसीद) प्रसन्न होओ ॥ १ ॥ ॐ ॥

भगवति भवलीलामौलिमाले तवाम्भः
कणमणुपरिमाणं प्राणिनो ये स्पृशन्ति ।
अमरनगरनारीचामरग्राहिणीनां
विगतकलिकलङ्कातङ्कमङ्के लुठन्ति ॥ २ ॥

अन्वयार्थ—(भगवति) हे सम्पूर्ण ऐश्वर्योंवाली (भवलीलामौलि-माले) भगवान् महादेव के जटामुकुटमें मालारूप आभूपण के समान देवि गङ्गे ! (तवाम्भः) तुम्हारे जलका (ये प्राणिनः) जो प्राणी (कणमणु-परिमाणं स्पृशन्ति) बून्द के समान थोड़े परिमाण में भी स्पर्श करते हैं वे (विगतकलिकलङ्कातङ्कम्) कलियुग के पापमय कलङ्करूपी मल के आतङ्क से रहित होकर (अमरनगरनारीचामरग्राहिणीनाम्) देवताओं की पुरी

अमरावती की चामर ग्रहण करनेवाली देवाङ्गनाओंके (अङ्के) अङ्क में (गोदमें) (लुठन्ति) लोटते हैं ॥ २ ॥ ॐ ॥

ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती
स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती ।
क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमूर्निर्भरं भर्त्सयन्ती
पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित्पावनी नः पुनातु ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ—(ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती) ब्रह्माण्डके खण्ड करती हुई (हरशिरसि) भगवान् शङ्करके मस्तक पर (जटावल्लिमुल्लासयन्ती) जटारूपिणी लताको प्रफुल्लित करती हुई (स्वर्लोकादापतन्ती) स्वर्गलोक से नीचे गिरती हुई (कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती) सुमेरु पर्वत की गुफाकी मध्य शिला परसे बहती हुई (क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती) पृथ्वीके पृष्ठभागपर लोटती हुई (दुरितचयचमूर्निर्भरं भर्त्सयन्ती) पापोंके समूह का नाश करती हुई (पाथोधिं पूरयन्ती) समुद्र को जलसे परिपूर्ण करती हुई (पावनी सुरनगरसरित्) देवलोक की पवित्र नदी गङ्गा (नः) हमको (पुनातु) पवित्र करे ॥ ३ ॥ ॐ ॥

मज्जन्मातङ्गकुम्भच्युतमदमदिरामोदमत्तालिजालं
स्नानैः सिद्धाङ्गनानां कुचयुगविगलत्कुङ्कुमासंगपिङ्गम् ।
सायंप्रातर्मुनीनां कुशकुसुमचयैश्छन्नतीरस्थनीरं
पायान्नो गाङ्गमम्भः करिकलभकराक्रान्तरंहस्तरङ्गम् ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ—(मज्जन्मातङ्गकुम्भच्युतमदमदिरामोदमत्तालिजालम्) जलक्रीडाके समयमें स्नान करनेवाले हाथियोंके कपोलों से गिरते हुए मदरूपी मद्य को पाकर आनन्दित हुए भ्रमरसमूह से युक्त (स्नानैः सिद्धाङ्गनानां कुचयुगविगलत्कुंकुमासंगपिंगम्) स्नानकरनेके कारण सिद्धोंकी स्त्रियोंके स्तनद्वय से छुटी हुई केसरसे पीलेरंगवाला (सायंप्रातर्मुनीनां कुशकुसुमचयैश्छन्नतीरस्थनीरम्) प्रातःकाल व सायंकाल सन्ध्यावन्दन करनेसे मुनियोंके कुश और पुष्पोंके समूहसे ढकाहुआ तटके निकटका नीर तथा (करिकलभकरा-

स्वामी लक्ष्मीरामानन्द तीर्थ
प्रमथ भुवन

क्रान्तरंहस्तरङ्गम् गाङ्गमम्भः) हाथियोंके बच्चोंद्वारा सूण्डों से रोकेजानेके कारण वेगसे बहनेवाला तरङ्गयुक्त परमपावन गङ्गाजल (नः पायात्) हमारी रक्षा करे ॥ ४ ॥ ॐ ॥

आदावादिपितामहस्य नियमव्यापारपात्रे जलं
पश्चात्पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम् ।
भूयः शम्भुजटाविभूषणमणिर्जह्नोर्महर्षेरियं
कन्या कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते ॥५॥

अन्वयार्थ—(आदौ) आरम्भमें पहले (आदिपितामहस्य) प्रथमशरीरीब्रह्माके (नियमव्यापारपात्रे) कमण्डलुमें (जलं) जलरूपमें थी (पश्चात्पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनं) तत्पश्चात् शेषशैयापर शयनकरनेवाले भगवान् विष्णुका पवित्र चरणोदक बनी (भूयः शम्भुजटाविभूषणमणिः) और फिर भगवान् शङ्कर की जटाओंका श्रेष्ठ आभूषण हुई (जह्नोर्महर्षेरियं कन्या कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते) इस प्रकार अनेक रूपोंमें महर्षि जह्नु की कन्या पापों का नाश करनेवाली भगवती भागीरथी देखी जाती है ॥ ५ ॥ ॐ ॥

शैलेन्द्रादवतारिणी निजजले मज्जज्जनोत्तारिणी
पारावारविहारिणी भवभयश्रेणीसमुत्सारिणी ।
शेषाहेरनुकारिणी हरशिरोवल्लीदलाकारिणी
काशीप्रान्तविहारिणी विजयते गङ्गा मनोहारिणी ॥६॥

अन्वयार्थ—(शैलेन्द्रादवतारिणी) पर्वतराज हिमालय से निकलनेवाली) (निजजले मज्जज्जनोत्तारिणी) अपनेजलमें स्नान करनेवाले जनको तारनेवाली (पारावारविहारिणी) समुद्रमें विहार करनेवाली (भवभयश्रेणीसमुत्सारिणी) संसारके भयसमुदायको दूर करनेवाली (शेषाहेरनुकारिणी) शेषनागके समान तिरछी लहरों से युक्त चाल का अनुकरणकरनेवाली (हरशिरोवल्लीदलाकारिणी) भगवान् शङ्करके मस्तकपर लतापत्रके आकारवाली (काशीप्रान्तविहारिणी) काशीप्रदेशमें विहार करनेवाली (मनोहा-

रिणी) और मनको हरनेवाली (गङ्गा विजयते) श्रीगङ्गामहारानी की जय हो ॥ ६ ॥ ॐ ॥

कुतोऽवीचिर्वीचिस्तव यदि गता लोचनपथं
त्वमापीता पीताम्बरपुरनिवासं वितरसि ।
त्वदुत्सङ्गे गङ्गे पतति यदि कायस्तनुभृतां
तदा मातः शातक्रतवपदलाभोऽप्यतिलघुः ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ—(कुतोऽवीचिर्वीचिस्तव यदि गता लोचनपथम्) यदि कोई विशेष पुण्य हो तो तुम्हारी लहरों की शोभा नेत्रमार्ग से (हृदयमें) प्राप्त होती है. (त्वमापीता पीताम्बरपुरनिवासं वितरसि) हे गंगे ! तुम्हारा जल पीने से तुम पीताम्बरधारी भगवान् विष्णुके पुर—वैकुण्ठधाम—में निवास देती हो। (त्वदुत्सङ्गे गङ्गे यदि तनुभृतां कायः पतति) हे माता गंगा ! यदि जीवधारियोंके शरीर तुम्हारी गोदमें गिरते है (तदा मातः शातक्रतवपद-लाभोऽप्यतिलघुः) तो उस समय उसके संमुख देवराज इन्द्रके पद की प्राप्तिभी अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होती है ॥ ७ ॥ ॐ ॥

गङ्गे त्रैलोक्यसारे सकलसुरवधूधौतविस्तीर्णतोये
पूर्णब्रह्मस्वरूपे हरिचरणरजोहारिणी स्वर्गमार्गे ।
प्रायश्चित्तं यदि स्यात्तव जलकणिका ब्रह्महत्यादिपापे
कस्त्वां स्तोतुं समर्थस्त्रिजगदघहरे देवि गङ्गे प्रसीद ॥८॥

अन्वयार्थ—(गङ्गे) हे माता गंगा ! तुम (त्रैलोक्यसारे) तीनों लोकों का सार हो (सकलसुरवधूधौतविस्तीर्णतोये) समस्त देवाङ्गनाओं के स्नान करते समय में उनके दिव्य अङ्गों से छूटे हुए दिव्य अङ्गराग की सुगन्धि से युक्त प्रशस्त निर्मल जलवाली हो (पूर्णब्रह्मस्वरूपे) परम पावन परमाधार पूर्ण ब्रह्मस्वरूपिणी हो (हरिचरणरजोहारिणी) सर्वव्यापी विष्णुके चरणों की रजका हरण करनेवाली हो (स्वर्गमार्गे) स्वर्ग का मार्ग दिखानेकें लिये निसैनीरूपिणी हो (यदि ब्रह्महत्यादिपापे तव जलकणिका प्रायश्चित्तं स्यात्) ब्रह्महत्यादि पापोंमें तुम्हारे पतितपावन जलका कणमात्र (एक छोटी

बूंद ही) पीना पापसे निर्मुक्त होने के लिये पूर्ण प्रायश्चित्त है (त्रिजगदघहरे, त्वां स्तोतुं कः समर्थः) तीन लोकोंके पापोंको हरनेवाली तुम्हारी प्रशंसा करने में कौन समर्थ है ? अतः (देवि गङ्गे प्रसीद) हे माता गङ्गा ! हमपर प्रसन्न होओ ॥ ८ ॥ ॐ ॥

मातर्जाह्नवि शम्भुसङ्गवलिते मौलौ निधायाञ्जलिं
त्वत्तीरे वपुषोऽवसानसमये नारायणाङ्घ्रिद्वयम् ।
सानन्दं स्मरतो भविष्यति मम प्राणप्रयाणोत्सवो
भूयाद्भक्तिरविच्युता हरिहराद्वैतात्मिका शाश्वती ॥९॥

अन्वयार्थ—(मातर्जाह्नवि) हे माता जाह्नवी (शम्भुसङ्गवलिते) हे भगवान् शङ्कर की जटाओं में वलय (कङ्गन) के आकारवाली (मौलौ निधायाञ्जलिं) नत मस्तक हो हात जोडकर (त्वत्तीरे) तुम्हारे तटपर (वपुषोऽवसानसमये) देहान्त होने के समय (नारायणाङ्घ्रिद्वयं) श्रीमन्नारायणके दोनों चरणकमलोंका (सानन्दं स्मरतो) आनन्दपूर्वक स्मरण करते हुए (मम प्राणप्रयाणोत्सवो भविष्यति) मेरे प्राणगमन का उत्सव होगा अतः प्रार्थना है कि उससमय (हरिहराद्वैतात्मिका अविच्युता शाश्वती भक्तिः भूयात्) हरि और हर अर्थात् विष्णु और शिव दोनों में अभेदस्वरूपिणी अद्वैतात्मिका, अटल, अविचल और अविनाशिनी भक्ति प्राप्त होवे ॥ ९ ॥ ॐ ॥

गङ्गाष्टकपाठमाहात्म्य ।

गङ्गाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतो नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १० ॥

परलोकमें सद्गति की प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील जो मनुष्य इस गङ्गाष्टक को पढता है वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर अन्तमें विष्णुलोक को जाता है ॥ १० ॥ ॐ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

२ श्रीगोविन्दाष्टकम्

श्रीमद्भगवत्पूज्यपादाद्यशङ्कराचार्यप्रणीतम् ।

सत्यं ज्ञानमनन्तं नित्यमनाकाशं परमाकाशं
गोष्ठप्राङ्गणरिङ्गणलोलमनायासं परमायासम् ।
मायाकल्पितनानाकारमनाकारं भुवनाकारं
क्ष्मामानाथमनाथं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(सत्यम्) बाधारहित (ज्ञानम्) स्वयंप्रकाश (अनन्तम्) अन्तरहित (नित्यम्) उत्पत्तिनाश से रहित (अनाकाशं) आकाश से भिन्न (परमाकाशम्) परमप्रकाशरूप (गोष्ठप्राङ्गणरिङ्गणलोलम्) व्रजकी गोशालाओं के आङ्गण में "गोवत्सों के पीछे" दौड़ने में चपल (अनायासम्) परिश्रमसे रहित (परमायासम्) कर्ता भोक्ता, सुखी दुखी होने से श्रमयुक्त (मायाकल्पितनानाकारम्) माया के सम्बन्ध से माने गये अनेक शरीरवाले (अनाकारम्) आकार से रहित (भुवनाकारम्) ब्रह्मलोक से लेकर पाताल पर्यन्त समस्त भुवनमय आकारवाले (क्ष्मामानाथम्) पृथ्वी और लक्ष्मी दोनों के नाथ (अनाथम्) और स्वतन्त्र (गोविन्दं परमानन्दम्) श्रीकृष्णपरमात्माको (प्रणमत) नमस्कार करो ॥ १ ॥ ॐ ॥

मृत्स्नामत्सीहेति यशोदाताडनशैशवसंत्रासं
व्यादितवक्त्रालोकितलोकालोकचतुर्दशलोकालिम् ।
लोकत्रयपुरमूलस्तम्भं लोकालोकमनालोकम्
लोकेशं परमेशं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥ २ ॥

अन्वयार्थ—(इह) दूध दही मक्खनादि समस्त खाद्यपदार्थयुक्त घर में (मृत्स्नाम्) मिट्टीको (अत्सि) तुम खाते हो (इति) इस प्रकार (यशोदाताड़नशैशवसंत्रासम्) यशोदा माता द्वारा की गई ताड़ना से बालोचित

भययुक्त होकर (व्यादितवक्त्रालोकितलोकालोकचतुर्दशलोकालिम्) अपना मुख खोलकर यशोदाको चौदहों लोकों के दर्शन करानेवाले (लोकत्रयपुरमूलस्तम्भं) त्रयलोकरूपी पुर के आधाररूप (लोकालोकम्) समस्त जगत को प्रकाशमय करनेवाले (अनालोकम्) दूसरे के प्रकाश से प्रकाशित न होनेवाले (लोकेशम्) सम्पूर्ण लोकों को प्रेरणा करनेवाले जगत के ईश्वर (परमेशम्) और ब्रह्मादि देवता ओं के विनियन्ता परमेश्वर (गोविंदं) श्रीकृष्ण परमात्मा को (प्रणमत) नमस्कार करो ॥ २ ॥ ॐ ॥

त्रैविष्टपरिपुवीरघ्नं क्षितिभारघ्नं भवरोगघ्नं
कैवल्यं नवनीताहारमनाहारं भुवनाहारम् ।
वैमल्यस्फुटचेतोवृत्तिविशेषाभासमनाभासं
शैवं केवलशान्तं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ—(त्रैविष्टपरिपुवीरघ्नम्) स्वर्ग के शत्रु रावणादि वीरों को मारनेवाले (क्षितिभारघ्नम्) पृथ्वी के भार को हटानेवाले (भवरोगघ्नम्) सद्गुरुरूप से संसारके जन्ममरणरूप रोग को मिटानेवाले (कैवल्यम्) मोक्षरूप (नवनीताहारम्) मक्खन का भोजन करनेवाले (अनाहारम्) तिसपरभी आहार से रहित (भुवनाहारम्) स्वरूपसाक्षात्कार से सम्पूर्ण जगत को चिन्मात्रावशेष करनेवाले (वैमल्यस्फुटचेतोवृत्तिविशेषाभासम्) रागादि मलरहित शुद्ध चित्तवृत्ति की अवस्था में प्रगट होनेवाले (शैवम्) कल्याणरूप (केवलशान्तम्) और दृश्य प्रपञ्च के संसर्ग से रहित आनन्दकन्द श्री कृष्ण परमात्मा को, हे जीव, तुम नमस्कार करो ॥ ३ ॥ ॐ ॥

गोपालं प्रभुलीलाविग्रहगोपालं कुलगोपालं
गोपीखेलनगोवर्धनधृतिलीलालालितगोपालम् ।
गोभिर्निगदितगोविन्दस्फुटनामानं बहुनामानं
गोधीगोचरदूरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ—(गोपालम्) गौओं का पालन करनेवाले (प्रभुलीलाविग्रहगोपालम्) सर्व सामर्थ्यवान् होने से लीलार्थ शरीर धारण करके वेद (वाणी) का पालन करनेवाले (कुलगोपालम् कुः—पृथ्वी, लः—लीन, गोः—

इन्द्रिय) पृथ्वी में लीन होनेवाले शरीर और इन्द्रियों का पालन करनेवाले (गोपीखेलनगोवर्धनधृतिलीलालालितगोपालम्) गोपियों के साथ खेल करने के लिये गोवर्धनपर्वत को अंगुलीपर धारण कर अहीरों को प्यार करनेवाले (गोभिर्निगदितगोविन्दस्फुटनामानं बहुनामानम्) वेदवाक्यद्वारा कहे गये गोविन्दादि अनेक नामोंवाले (गोधीगोचरदूरम्) तथा इन्द्रिय और बुद्धि की शक्ति से परे अर्थात् अगम्य श्रीकृष्णपरमात्मा को, हे जीव, नमस्कार करो ॥ ४ ॥ ॐ ॥

गोपीमण्डलगोष्ठीभेदं भेदाऽवस्थमभेदाभं
शश्वद्गोखुरनिर्धूतोद्धृतधूलीधूसरसौभाग्यम् ।
श्रद्धाभक्तिगृहीतानन्दमचिन्त्यं चिन्तितसद्भावम्
चिन्तामणिमणिमानं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥५

अन्वयार्थ—(गोपीमण्डलगोष्ठीभेदम्) गोपियों के समूह के साथ क्रीडा करनेवाले (भेदावस्थं, अभेदाभम्) गोप, गोपी, गोवत्सादि बहुभेदों से स्थित किन्तु वास्तव में अभेदान्वय से एकरस प्रकाशमान (शश्वद्गोक्षुरनिर्धूतोद्धृतधूलीधूसरसौभाग्यम्) निरन्तर गौओं के खुरों से उड़ी हुई धूली से पाण्डुवर्ण होने को अपना सौभाग्य माननेवाले (श्रद्धाभक्तिगृहीतानन्दम्) श्रद्धा और भक्ति से ग्रहण किये जानेवाले (अचिन्त्यम्) विचारशक्तिसे परे (चिन्तितसद्भावम्) श्रुतियों द्वारा निश्चित सत्तावाले (चिन्तामणिम्) 'चिन्तामणि' के समान भक्तों के मन की अभिलाषा को पूर्ण करनेवाले (अणिमानम्) अत्यन्त सूक्ष्म और परम आनन्द देनेवाले श्रीकृष्ण परमात्माको नमस्कार करो ॥ ५ ॥ ॐ ॥

स्नानव्याकुलयोषिद्वस्त्रमुपादायागमुपारूढं
व्यादित्सन्तीरथ दिग्वस्त्रा ह्युपादातुमुपकर्षन्तम् ।
निर्धूतद्वयशोकविमोहं बुद्धं बुद्धेरन्तस्थं
सत्तामात्रशरीरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ—(स्नानव्याकुलयोषिद्वस्त्रम्) स्नानमें व्याकुल स्त्रियों के वस्त्रों को (उपादाय), अगम्, उपारूढम् (लेकर के कदम्ब वृक्ष के

ऊपर चढ़नेवाले (दिग्वस्त्रा अथ व्यादित्सन्तीः) नग्न होने के कारण वस्त्र-ग्रहण करने की इच्छावाली गोपियोंको (उपादातुं उपकर्षन्तम्) वस्त्र देनेके लिये अपने समीप बुलानेवाले (निर्धूतद्वयशोकविमोहम्) शोक और मोह दोनों का तिरस्कार करनेवाले (बुद्धम्) ज्ञानवान् (बुद्धेः अन्तस्थं) बुद्धि में स्थित रहनेवाले (सत्तामात्रशरीरम्) और तीनों काल में एकरस स्वरूपवाले श्रीकृष्ण परमात्मा को नमस्कार करो ॥ ६ ॥ ॐ ॥

कान्तं कारणकारणमादिमनादिं कालघनाभासं
कालिन्दीगतकालियशिरसि नृत्यन्तं बहुनृत्यन्तम् ।
कालं कालकलातीतं कलिताशेषं कलिदोषघ्नम्
कालत्रयगतिहेतुं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ—(कान्तम्) परम सुन्दर (कारणकारणम्) प्रकृति का भी अधिष्ठान (आदिम्) सबका कारण (अनादिम्) अन्य कारणरहित (कालघनाभासं) प्रलयकाल के मेघ के समान मनोहर (कालिन्दीगतकालियशिरसि नृत्यन्तं बहुनृत्यन्तम्) कालिन्दी में रहनेवाले नाग के फनपर बारंबार नृत्य करनेवाले (कालम्) जगत् के संहारकर्ता (कालकलातीतम्) भूत-भविष्यत्वर्तमानरूपकालत्रुटिनिमेषकाष्ठादि काल से अतीत (कलिताशेषम्) सम्पूर्ण जगत् को बनानेवाले (कलिदोषघ्नं) कलियुग के दोषों का नाश करनेवाले (कालत्रयगतिहेतुम्) प्रातः मध्यान्ह और सायं इन तीनों संध्याओं के अथवा भूत भविष्यत् वर्तमान इन तीनों कालों के कारणभूत कृष्णचन्द्र को नमस्कार करो ॥ ७ ॥ ॐ ॥

वृन्दावनभुवि वृन्दारकगणवृन्दाराधितवन्देऽहं
कुन्दाभामलमन्दस्मेरसुधानन्दं सुहृदानन्दम् ।
वन्द्याशेषमहामुनिमानसवन्द्यानन्दपदद्वन्द्वं
वन्द्याशेषगुणाब्धिं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ—(वृन्दावनभुवि वृन्दारकगणवृन्दाराधितवन्देहम्) वृन्दावनकी भूमि में रासक्रीड़ा के समय देवता ओं द्वारा पूजित और प्रशंसित ईहा

नाम क्रीड़ावाले (कुन्दाभामलमन्दस्मेरसुधानन्दम्) कुन्द (चमेली) के पुष्प के समान प्रकाशित मन्द हास्य से अमृततुल्य आनन्द देनेवाले (सुहृदानन्दम्) भक्त जनों को सुखरूप (वन्द्याशेषमहामुनिमानसवन्द्यानन्दपदद्वन्द्वम्) जगद्वन्दनीय नारदादि महामुनियोंद्वारा आनन्दपूर्वक मन में ध्येयचरणकमलवाले (वन्द्याशेषगुणाब्धिम्) शान्त्यादि समस्त सद्गुणों के आधारस्थान श्रीकृष्णचन्द्र को नमस्कार करो ॥ ८ ॥ ॐ ॥

गोविन्दाष्टकमेतदधीते गोविन्दार्पितचेता यो
गोविन्दाच्युत माधव विष्णो गोकुलनायक कृष्णेति ।
गोविन्दाङ्घ्रिसरोजध्यानसुधाजलधौतसमस्ताघो
गोविन्दं परमानन्दामृतमन्तस्थं स समभ्येति ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ—(गोविन्दार्पितचेता) श्रीकृष्णचन्द्र में चित्तको अर्पण करके (गोविन्दांघ्रिसरोजध्यानसुधाजलधौतसमस्ताघः) गोविन्द के चरणकमल के ध्यानरूप अमृत द्वारा समस्त पापों को नष्ट करके (यः) जो व्यक्ति हे गोविन्द, हे अच्युत, हे माधव, हे विष्णो, हे गोकुलनायक, हे कृष्ण इन नामों से पुकार कर (एतत् गोविन्दाष्टकम्, अधीते) इस गोविन्दाष्टक का प्रेमपूर्वक पाठ करता है वह भक्त (परमानन्दामृतं, अन्तस्थम्, गोविन्दम्, समभ्येति) परम आनन्दस्वरूप अमृतरूप, मोक्षरूप, तथा सर्वदा हृदय में स्थित गोविन्द को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ ॐ ॥

हरिः ॐ तत्सत्—ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

---

३ श्रीगुर्वष्टकम्

श्रीमद्भगवत्पूज्यपादाद्यशङ्कराचार्यप्रणीतम्—

शरीरं सुरूपं तथा वा कलत्रं
यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम् ।
मनश्चेन्न लग्नं हरेरङ्घ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ १ ॥

भावार्थ—यदि शरीर सुन्दर हुआ तो उससे क्या? यदि स्त्री सुन्दर हुई तो उससे भी क्या? अत्यन्त निर्मल अतएव सुन्दर कीर्ति और सोनेके सुमेरुपर्वतके समान विपुलधन होनेसे भी क्या लाभ हुआ? यदि निष्कपट शुद्ध-भावसे जगद्गुरु हरि परमेश्वरके चरणों में मन को नहीं लगाया? ॥ १ ॥ ॐ ॥

कलत्रं धनं पुत्रपौत्रादि सर्वं
गृहं बान्धवाः सर्वमेतद्धि जातम् ।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ २ ॥

भावार्थ—स्त्री, धन, पुत्रपौत्रादि सब कुछ तथा गृह, जाति बन्धुवर्ग इत्यादि होनेपर भी यदि हरिरूप श्रीगुरुदेवके चरणकमल में मन को न लगाया तो ऐसे जीवन से क्या लाभ हुआ? ॥ २ ॥ ॐ ॥

षडङ्गादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या
कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति ।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ३ ॥

भावार्थ—यदि शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिषादि छः अङ्गों सहित ऋगादि वेद, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, सांख्य, योग, न्याय तथा वैशेषिक आदि शास्त्र और चौदहो विद्याओं को कण्ठस्थ भी कर-लियाहो तो उससे कुछ भी लाभ नहीं और गद्यपद्यात्मक काव्यादि रचनेकी क्षमता भी किसी अर्थ की नहीं यदि गुरूके चरणों में मन नहीं लगाया गया ॥ ३ ॥ ॐ ॥

विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः
सदाचारवृत्तेषु मत्तो न चान्यः ।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ४ ॥

भावार्थ—विदेश में मान हो, स्वदेश में प्रशंसा हो, और अपनी सदाचारपरायणता का इतना अभिमान हो कि, मुझसे अधिक सदाचारी दूसरा कोई है ही नहीं, यह सब होने पर भी यदि गुरुदेवके चरणकमल में निष्कपटभाव से मन नहीं लगा तो इन सब से कुछ भी लाभ नहीं ॥४॥ ॐ ॥

क्षमामण्डले भूपभूपालवृन्दैः
सदा सेवितं यस्य पादारविन्दम् ।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिसके चरणकमलों की सेवा पृथ्वीमण्डल के राजा महाराजा लोग सदा करतेहों ऐसे मनुष्यका इतना बडा सम्मान भी निष्फल है यदि श्रीगुरुदेवके चरणोंमें निष्कपट भावसे मनको नहीं लगाया ॥ ५ ॥ ॐ ॥

यशो मे गतं दिक्षु दानप्रतापा–
ज्जगद्वस्तु सर्वं करे यत्प्रसादात् ।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ६ ॥

भावार्थ—मेरा यश दानके प्रताप से सम्पूर्ण दिशाओं में व्याप्त है जिसके प्रभावसे संसारके सारे पदार्थ मेरे हस्तगत है ऐसा समझनेवाले दानशील का दान भी निष्फल है यदि गुरुदेवके चरणोंमें निष्कपटभाव मन नहीं लगाया ॥ ७ ॥ ॐ ॥

न भोगे न योगे न वा वाजिराजौ
न कान्तामुखे नैव वित्तेषु चित्तम् ।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ७ ॥

भावार्थ—यदि कोई ऐसा जितेन्द्रिय हो कि जिसका चित्त न तो भोग विलास में, न हठयोगादि में, न उत्तम घोडों में, न चन्द्रमुखी कामिनी में

और न धनधान्यादिके संग्रह में आसक्त हुआ परन्तु ऐसी अनासक्ति होते हुए भी यदि श्रीगुरुदेवके चरणों में निष्कपटभावसे मन नहीं लगाया तो उसके जितेन्द्रियता से कोई लाभ नहीं ॥ ७ ॥ ॐ ॥

अरण्ये न वा स्वस्य गेहे न कार्ये
न देहे मनो वर्तते मे त्वनर्घ्ये ।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ८ ॥

भावार्थ—यदि कोई ऐसा विरक्त हो कि जिसकी मनोवृत्ति वन में, निज परिवारपूरित घर में, व्यापार में, शरीरके पालनपोषणादि में तथा अमूल्य पदार्थों के संग्रहादि किसीभी कार्य में नहीं लगी परन्तु फिरभी यदि श्रीगुरुदेवः के चरणकमलों में उसका मन नही लगा, तो उसका वह वैराग्य बिलकुल निरर्थक हैं ॥ ८ ॥ ॐ ॥

अनर्घ्याणि रत्नानि मुक्तानि सम्यक्
समालिङ्गिता कामिनी यामिनीषु ।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ९ ॥

भावार्थ—यदि श्रीगुरुदेवके चरणकमलों में निष्कपटभाव से मन नहीं लगाया गया तो अमूल्य रत्नों का तथा मुक्तादिक का उपभोग और रात्रि में कोमलकलेवरा चन्द्रमुखी कामिनियों का भलीप्रकार आलिङ्गन करना इत्यादि सब प्रकारके सुख निष्फल हैं यदि श्रीसद्गुरुचरणमें प्रीति नहीं ॥ १० ॥ ॐ ॥

गुरोरष्टकं यः पठेत्पुण्यदेही
यतिर्भूपतिर्ब्रह्मचारी च गेही ।
लभेद्वाञ्छितार्थं पदं ब्रह्मसंज्ञं
गुरोरुक्तवाक्ये मनो यस्य लग्नम् ॥ १० ॥

भावार्थ—जो पुण्यात्मा, संन्यासी; नृपति, ब्रह्मचारी, तथा गृहस्थ इस अष्टकको पढता है, जिसका मन श्रीगुरुदेवके कहे हुए वाक्यों में लगा हुआ

है तथा गुरूके वाक्योंकी श्रद्धा और विश्वासपूर्वक हृदय से अङ्गीकार करता है वह अभिलषित अर्थरूपी परब्रह्म को प्राप्त होता है अर्थात् ब्रह्म में लीन होजाता है ॥ १० ॥ ॐ ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्ति !!!

ॐ

प्रश्नोत्तरमणिरत्नमाला

अपारसंसारसमुद्रमध्ये संमज्जतो मे शरणं किमस्ति ।
गुरो कृपालो कृपया वदैतद्विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका ॥ १ ॥

प्रश्न–हे दयामय गुरुदेव! कृपा करके यह बताइये कि इस संसाररूपी अपार समुद्र में मुझ डूबते हुए के लिये कौनसा आश्रय है ?

उत्तर–सम्पूर्ण विश्वके प्रभु श्रीपरमात्माका चरणकमलरूपी जहाज (नौका)।

बद्धो हि को यो विषयानुरागी
का वा विमुक्तिर्विषये विरक्तिः ।
को वास्ति घोरो नरकः स्वदेहः
तृष्णाक्षयः स्वर्गपदं किमस्ति ॥ २ ॥

प्रश्न–कौन व्यक्ति वास्तव में बँधा हुआ है ?
उ०–जो विषयों में आसक्त है ।
प्र०–विमुक्ति क्या है ? उ०–विषयो में वैराग्य ।
प्र०–घोर नरक कौनसा है ? उ०– अपना शरीर ।
प्र०–स्वर्ग का पद क्या है ? उ०–तृष्णा का नाश होना ।

संसारहृत्कः श्रुतिजात्मबोधः
को मोक्षहेतुः कथितः स एव ।

द्वारं किमेकं नरकस्य नारी
का स्वर्गदा प्राणभृतामहिंसा ॥ ३ ॥

प्र०–संसार के भय को हरनेवाला कौन है?
उ०–वेदसे उत्पन्न हुआ आत्मज्ञान।
प्र०–मोक्ष का कारण क्या है? उ०–वही आत्मज्ञान।
प्र०–नरक का प्रधान द्वार क्या है? उ०–नारी।
प्र०–स्वर्ग को देनेवाली कौन है?
उ०–सब प्राणियों की अहिंसा (किसी प्रकार भी पीड़ा न पहुँचाना)।

शेते सुखं कस्तु समाधिनिष्ठो
जागर्ति को वा सदसद्विवेकी।
के शत्रवः सन्ति निजेन्द्रियाणि
तान्येव मित्राणि जितानि यानि ॥ ४ ॥

प्र०–(वास्तव में) कौन सुख से सोता है?
उ०–वही व्यक्ति जो परमात्मा के स्वरूप में स्थित है।
प्र०–कौन जागता है? उ०–जिसको सत् और असत् का ज्ञान है।
प्र०–शत्रु कौन हैं?
उ०–अपनी इन्द्रियां। परन्तु यदि वश में रक्खी जायँ तो वेही मित्र का काम करती हैं।

को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णः
श्रीमाँश्च को यस्य समस्ततोषः।
जीवन्मृतः कस्तु निरुद्यमो यः
को वाऽमृतः स्यात्सुखदा निराशा ॥ ५ ॥

प्र०–दरिद्र कौन है? उ०–जिसकी तृष्णा बढ़ी हुई है।
प्र०–धनवान कौन है? उ०–जिसे सब प्रकार से संतोष है।
प्र०–(वास्तव में) जीतेजी मरा हुआ कौन है?

उ०-जो पुरुषार्थहीन अथवा निरुद्यमी है।

प्र०-अमृत क्या है?

उ०-सुख देनेवाली निराशा (आशा से रहित होना ही वास्तव में अमृत है)।

पाशो हि को यो ममताभिमानः
सम्मोहयत्येव सुरेव का स्त्री।
को वा महान्धो मदनातुरो यो
मृत्युश्च को वाऽपयशः स्वकीयम् ॥ ६ ॥

प्र०-वास्तव में क्या फाँसी है?

उ०-जो "मैं" और "मेरा" रूप ममता का अभिमान है।

प्र०-मदिरा के समान कौनसी वस्तु निश्चयही मोहित करदेती है?

उ०-नारी।

प्र०-महान् अन्धा कौन है? उ०-जो कामपीड़ा से व्याकुल है।

प्र०-मृत्यु क्या है? उ०-अपना अपयश।

को वा गुरुर्यो हि हितोपदेष्टा
शिष्यस्तु को यो गुरुभक्त एव।
को दीर्घरोगो भव एव साधो
किमौषधं तस्य विचार एव ॥ ७ ॥

प्र०-गुरु कौन है? उ०-जो केवल हितकाही उपदेश दे।

प्र०-शिष्य कौन है? उ०-जो गुरुभक्त हो।

प्र०-गुरुदेव! बड़ा भारी रोग कौनसा है?

उ०-हे साधु! बारंबार जन्म लेना ही।

प्र०-उसकी औषधि क्या है?

उ०-परमात्मा के स्वरूप का विचार वा मनन करना।

किं भूषणाद्भूषणमस्ति शीलं
तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धम्।

किमत्र हेयं कनकं च कान्ता
श्राव्यं सदा किं गुरुवेदवाक्यम् ॥ ८ ॥

प्र०—भूषणों में उत्तम भूषण कौनसा है ?
उ०—उत्तम चरित्र वा शीलव्रत ।
प्र०—सबसे उत्तम तीर्थ कौनसा है ?
उ०—विशेष रूप से शुद्ध किया हुआ अपना मन ।
प्र०—इस संसार में कौन २ सी वस्तु त्यागने योग्य है ?
उ०—काञ्चन (सोना) और भामिनी (स्त्री) ।
प्र०—सदा (मन लगाकर) सुननेयोग्य क्या है ?
ऊ०—वेद और गुरु का वचन ।

के हेतवो ब्रह्मगतेस्तु सन्ति
सत्सङ्गतिर्दानविचारतोषा ।
के सन्ति सन्तोऽखिलवीतरागा
अपास्तमोहाः शिवतत्त्वनिष्ठाः ॥ ९ ॥

प्र०—परमात्मा की प्राप्ति के साधन कौन २ से हैं ?
उ०—ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों का सङ्ग, सात्त्विक दान, परमेश्वर के स्वरूपका मनन और सन्तोष ।
प्र०—महात्मा कौन है ?
उ०—संसार के भोगों में जिनकी आसक्ति नहीं है, जिनका अज्ञान नष्ट हो चुका है और जो कल्याणरूप परमात्मतत्त्व में स्थित हैं ।

को वा ज्वरः प्राणभृतां हि चिन्ता
मूर्खोऽस्ति को यस्तु विवेकहीनः ।
कार्या प्रिया का शिवविष्णुभक्तिः
किं जीवनं दोषविवर्जितं यत् ॥ १० ॥

प्र०—प्राणियों के लिये वास्तविक ज्वर कौनसा है ? उ०—चिन्ता ।

प्र०-मूर्ख कौन है ? उ०-जो विचारहीन है।
प्र०-करने योग्य प्रिय क्रिया कौनसी है ?
उ०-शिव और विष्णु की भक्ति।
प्र०-असली जीवन कौनसा है ? उ०-जो सर्वथा निर्दोष है।

विद्या हि का ब्रह्मगतिप्रदा या
बोधो हि को यस्तु विमुक्तिहेतुः।
को लाभ आत्मावगमो हि यो वै
जितं जगत्केन मनो हि येन ॥ ११ ॥

प्र०-वास्तव में विद्या किसका नाम है ?
उ०-जो ब्रह्मगति (परमात्मा) को प्राप्त करा देनेवाली हो।
प्र०-वास्तव में ज्ञान कौनसा है ?
उ०-वही जो मुक्ति का साधन है। (मुक्तिः=वासनाक्षयः)
प्र०-यथार्थ लाभ क्या है ? उ०-आत्मतत्त्व की प्राप्ती।
प्र०-जगतको किसने जीता ? उ०-जिसने मनको जीतलिया।

शूरान्महाशूरतमोऽस्ति को वा
मनोजबाणैर्व्यथितो न यस्तु।
प्राज्ञोऽथ धीरश्च समस्तु को वा
प्राप्तो न मोहं ललनाकटाक्षैः ॥ १२ ॥

प्र०-वीरो में सब से बड़ा वीर कौन है ?
उ०-जो कामबाणों से पीडित नहीं होता।
प्र०-बुद्धिमान, समदर्शी और धीरपुरुष कौन है ?
उ०-जो स्त्रियों के कटाक्षों से मोह को नहीं प्राप्त होता।

विषाद्विषं किं विषयाः समस्ता
दुःखी सदा को विषयानुरागी।
धन्योऽस्ति को यस्तु परोपकारी
कः पूजनीयः शिवतत्त्वनिष्ठः ॥ १३ ॥

प्र०—सबसे भारी विष कौनसा है। उ०—सारे विषयभोग।

प्र०—सदा दुःखी कौन रहता है?

उ०—जो विषयोंके भोग में आसक्त है।

प्र०—धन्य कौन है? उ०—जो परोपकारी है।

प्र०—पूजनीय कौन है? उ०—कल्याणरूप परमात्म तत्त्व में स्थित महात्मा।

सर्वास्ववस्थास्वपि किं न कार्यं
किं वा विधेयं विदुषा प्रयत्नात्।
स्नेहं च पापं, पठनं च धर्मं
संसारमूलं हि किमस्ति चिन्ता॥ १४॥

प्र०—भली बुरी सब प्रकार की अवस्थाओं में विद्वानों को कौनसा काम नहीं करना चाहिये और कौनसा काम प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये?

उ०—संसारस्नेह तथा पाप नहीं करना चाहिये। सर्वदा सद्ग्रन्थों का पठन और धर्मका पालन करना चाहिये।

प्र०—संसारका मूल कौन है। उ०—चिंता।

विद्वान्महाविज्ञतमोऽस्ति को वा
नार्या पिशाच्या न च वञ्चितो यः।
का शृङ्खला प्राणभृतां हि नारी
दिव्यं व्रतं किं च समस्तदैन्यम्॥ १५॥

प्र०—विचारवानों में सबसे अधिक विचारशील कौन है?

उ०—जो स्त्रीरूप पिशाचिनी से नहीं ठगा गया है।

प्र०—प्राणियोंके लिये साकल (बंधन) क्या है? उ०—नारी।

प्र०—श्रेष्ठव्रत कौनसा है? उ०—पूर्णरूप से दैन्यभाव!

ज्ञातुं न शक्यं च किमस्ति सर्वै-
र्योषिन्मनो यच्चरितं तदीयम्।
का दुस्त्यजा सर्वजनैर्दुराशा
विद्याविहीनः पशुरस्ति को वा॥ १६॥

प्र०—क्या जानना सबसे लिये सम्भव नहीं है ?
उ०—स्त्री का मन और उसका चरित्र।
प्र०—सबलोगोंके लिये किसका त्याग करना कठिन है ?
उ०—बुरी वासनाका (विषय भोग और पापकी इच्छाओंका) !
प्र०—पशु कौन है ? उ०—जो सद्विद्या से रहित (मूर्ख) है !

वासो न सङ्गः सह कैर्विधेयो
मूर्खैश्च नीचैश्च खलैश्च पापैः ।
मुमुक्षुणा किं त्वरितं विधेयं
सत्सङ्गतिर्निर्ममतेशभक्तिः ॥ १७ ॥

प्र०—किन २ के साथ निवास और सङ्ग नहीं करना चाहिये ?
उ०—मूर्ख, नीच, दुष्ट और पापियों के साथ।
प्र०—मुक्ति चाहनेवालों को कौन सा काम अतिशीघ्र करना चाहिये ?
उ०— सत्सङ्ग (ब्रह्मनिष्ठ पुरुषोंका सङ्ग), ममता का सर्वथा त्याग और परमेश्वर की भक्ति।

लघुत्वमूलं च किमर्थितैव
गुरुत्वमूलं यदयाचनं च ।
जातो हि को यस्य पुनर्न जन्म
को वा मृतो यस्य पुनर्न मृत्युः ॥ १८ ॥

प्र०—छोटेपन की जड क्या है ? उ०—याचना।
प्र०—बडप्पन की जड क्या है ? उ०—कुछ भी न मांगना।
प्र०—किसका जन्म सराहनीय है ? उ०—जिसका फिर जन्म न हो।
प्र०—किसकी मृत्यु सराहनीय है ?
उ०—जिसकी फिर मृत्यु नही होती।

मूकोऽस्ति को वा बधिरश्च को वा
वक्तुं न युक्तं समये समर्थः ।

तथ्यं सुपथ्यं न शृणोति वाक्यं
विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी ॥ १९ ॥

प्र०—गूंगा कौन है ?
उ०—जो समयपर उचित वचन कहने में असमर्थ है।
प्र०—बहिरा कौन है ?
उ०—जो यथार्थ और हितकर वचन नहीं सुनता।
प्र०—विश्वासके योग्य कौन नहीं है ? उ०—नारी।

तत्त्वं किमेकं शिवमद्वितीयं
किमुत्तमं सच्चरितं यदस्ति।
त्याज्यं सुखं किं स्त्रियमेव सम्य-
ग्देयं परं किंत्वभयं सदैव ॥ २० ॥

प्र०—एकमात्र तत्त्व कौनसा है ?
उ०—अद्वितीय कल्याण तत्त्व (परमात्मा)।
प्र०—सबसे उत्तम क्या है ? उ०—सदाचरण।
प्र०—कौनसा सुख त्याग देना चाहिये ?
उ०—सब प्रकार का स्त्री का सुख।
प्र०—देनेयोग्य उत्तमदान कौन सा है ? उ०—सदा अभयदान।

शत्रोर्महाशत्रुतमोऽस्ति को वा
कामः सकोपानृतलोभतृष्णः।
न पूर्यते को विषयैः स एव
किं दुःखमूलं ममताभिधानम् ॥ २१ ॥

प्र०—शत्रुओं में सबसे बड़ा शत्रु कौन है ?
उ०—क्रोध, झूठ, लोभ और तृष्णासहित काम।
प्र०—विषय भोगों से कौन तृप्त नहीं होता ? उ०—वही काम।
प्र०—दुःख की जड़ क्या है ? उ०—ममतानामक दोष।

किं मण्डनं साक्षरता मुखस्य
सत्यं च किं भूतहितं सदैव ।
किं कर्म कृत्वा न हि शोचनीयं
कामारिकंसारिसमर्चनाख्यम् ॥ २२ ॥

प्र०–मुख का भूषण क्या है ? उ०–विद्वत्ता ।
प्र०–सच्चा कर्म क्या है ? उ०–सर्वदा प्राणियों का हित करना ।
प्र०–कौनसा काम करके पछताना नहीं पड़ता ?
उ०–कामके शत्रु शिव और कंसके शत्रु श्रीकृष्ण का पूजनरूप कर्म ।

कस्यास्ति नाशे मनसो हि मोक्षः
क्व सर्वथा नास्ति भयं विमुक्तौ ।
शल्यं परं किं निजमूर्खतैव
के के ह्युपास्या गुरुदेववृद्धाः ॥ २३ ॥

प्र०–किस के नाश से मोक्ष की प्राप्ति होती है ? उ०–मन के ।
प्र०–किस स्थिति में सर्वथा भय नहीं है ? उ०–मोक्ष में ।
प्र०–सब से अधिक चुभनेवाली कौन सी चीज है ?
उ०–अपनी मूर्खता ।
प्र०–उपासना के योग्य कौन २ हैं ? उ०–देवता, गुरु और वृद्धपुरुष ।

उपस्थिते प्राणहरे कृतान्ते
किमाशु कार्यं सुधिया प्रयत्नात् ।
वाक्कायचित्तैः सुखदं यमघ्नं
मुरारिपादाम्बुजचिन्तनं च ॥ २४ ॥

प्र०–प्राण हरनेवाले काल के उपस्थित होने पर बुद्धिमानों को कौनसा काम शीघ्र ही प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये ?

उ०–सुख देनेवाले और मृत्यु का नाश करनेवाले भगवान् मुरारि के चरण कमल का तन मन वचन से चिन्तन करना ।

के दस्यवः सन्ति कुवासनाख्याः
क: शोभते यः सदसि प्रविद्यः ।
मातेव का या सुखदा सुविद्या
किमेधते दानवशात्सुविद्या ॥ २५ ॥

प्र०—डाकू कौन है ? उ०—बुरी वासनाएं ।
प्र०—सभा में कौन शोभा पाता है ? उ०—अच्छा विद्वान् ।
प्र०—माता के समान सुख देनेवाली कौन है ? उ०—सुविद्या ।
प्र०—देने से क्या बढती है ? उ०—श्रेष्ठ विद्या ।

कुतो हि भीतिः सततं विधेया
लोकापवादाद्भवकाननाच्च ।
को वातिबन्धुः पितरश्च को वा
विपत्सहायाः परिपालका ये ॥ २६ ॥

प्र०—निरन्तर किससे डरना चाहिये ?
उ०—लोकनिन्दासे और संसाररूपी कानन से ।
प्र०—अपना प्रिय बन्धु कौन है ? उ०—जो विपत्ति में सहायक हो ।
प्र०—पिता कौन है ? उ०—जो भली प्रकार पालन पोषण करे ।

बुद्ध्वा न बोध्यं परिशिष्यते किं
शिवप्रसादं सुखबोधरूपम् ।
ज्ञाते तु कस्मिन्विदितं जगत्स्या-
त्सर्वात्मके ब्रह्मणि पूर्णरूपे ॥ २७ ॥

प्र०—क्या समझने के बाद कुछभी समझना बाकी नहीं रहता ?
उ०—शुद्ध, ज्ञानमय, आनन्दमय और कल्याणमय परमात्मा को ।
प्र०—किसको जान लेनेपर जगत् जाना जाता है ?
उ०—सर्वात्मरूप पूर्ण ब्रह्म के स्वरूप को ।

किं दुर्लभं सद्गुरुरस्ति लोके
सत्सङ्गतिर्ब्रह्मविचारणा च ।
त्यागो हि सर्वस्य शिवात्मबोधः
को दुर्जयः सर्वजनैर्मनोजः ॥ २८ ॥

प्र०–संसार में क्या दुर्लभ है ?

उ०–सद्गुरु, सत्सङ्ग, ब्रह्मविचार, सर्वस्वत्याग और कल्याणरूप आत्मज्ञान।

प्र०–किसको जीतना सबके लिये कठिन है ? उ०–कामदेव को।

पशोः पशुः को न करोति धर्मं
प्राधीतशास्त्रोऽपि न चात्मबोधः ।
किं तद्विषं भाति सुधोपमं स्त्री
के शत्रवो मित्रवदात्मजाद्याः ॥ २९ ॥

प्र०–पशुओं सेभी बढ़कर पशु कौन है ?

उ०–शास्त्रका अच्छीतरह अध्ययन करके भी जो धर्मका पालन नहीं करता और जिसे आत्मज्ञान नहीं हुआ।

प्र०–वह कौनसा विप है जो अमृतसा जान पड़ता है ? उ०–स्त्री।

प्र०–वे कौनसे शत्रु है जो मित्रसे लगते है ? उ०–पुत्रादि।

विद्युच्चलं किं धनयौवनायु-
र्दानं परं किञ्च सुपात्रदत्तम् ।
कण्ठं गतैरप्यसुभिर्न कार्यं
किं किं विधेयं मलिनं शिवार्चा ॥ ३० ॥

प्र०–बिजली की तरह क्षणिक क्या है ?

उ०–धन, यौवन (जवानी) और आयु।

प्र०–सब से उत्तम दान कौनसा है ?

उ०–जो सुपात्र को दिया जाय।

प्र०-प्राणों के कण्ठ में आजाने पर भी कौन काम ऐसा है जो नहीं करना चाहिये और कौन सा काम करना चाहिये ?

उ०--पाप नहीं करना चाहिये और कल्याणरूप परमात्मा की पूजा करनी चाहिये ।

अहर्निशं किं परिचिन्तनीयं
संसारमिथ्यात्वशिवात्मतत्त्वम् ।
किं कर्म यत्प्रीतिकरं मुरारेः
क्वास्था न कार्या सततं भवाब्धौ ॥ ३१ ॥

प्र०-रातदिन विशेषरूप से किसका चिन्तन करना चाहिये ?
उ०-संसार के मिथ्यापन का और कल्याणरूप परमात्म तत्त्व का ।
प्र०-वास्तव में कर्म क्या है ? उ०-जो भगवान श्रीकृष्ण को प्रिय हो ।
प्र०-किस में सदैव विश्वास नहीं करना चाहिये ?
उ०-संसाररूपी समुद्र में ।

कण्ठं गता वा श्रवणं गता वा
प्रश्नोत्तराख्या मणिरत्नमाला ।
तनोतु मोदं विदुषां सुरम्यं
रमेशगौरीशकथेव सद्यः ॥ ३२ ॥

मङ्गलवाक्य—यह प्रश्नोत्तर नाम की मणिरत्नमाला कण्ठ में अथवा कानों में जाते ही अर्थात् पठन और श्रवण करते ही लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु और उमापति भगवान् शङ्कर की कथा की तरह विद्वानों के चित्त में मनोहर आनन्दस्रोत की वृद्धि करे ॥ ६२ ॥

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितम्

५ आत्मषट्कस्तोत्रम्

॥ भुजङ्गप्रयातं छंदः ॥

मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे ।
न च व्योमभूमी न तेजो न वायु-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ १ ॥

भावार्थः—मैं (शुद्धात्मा) मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार नहीं हूँ; श्रोत्र, (कान) जिह्वा, नासिका और नेत्र नहीं हूँ; आकाश, पृथ्वी, तेज, (जल) और वायु भी नहीं हूँ किन्तु मैं चिदानन्दरूप शिवहूँ, शिवहूँ ॥१॥

अहं प्राणवर्गो न पंचानिला मे
न तोयं न मे धातवः पंचकोशाः ।
न वाक्पाणिपादौ न चोपस्थपायू
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ २ ॥

भावार्थः—मैं (शुद्धात्मा) जल और प्राणोंका समूह नहीं हूँ; मेरे पाँचवायु, सप्त धातु, पाँचकोश, वाणी, हाथ, पाँव, शिश्न और गुदा नही हैं किन्तु मैं चिदानन्दस्वरूप शिवहूँ, शिवहूँ ॥ २ ॥

न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ
मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः ।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्ष-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ३ ॥

भावार्थः—मुझ (शुद्धात्मा) को राग द्वेष, लोभ मोह, तथा मद

और मात्सर्यका मान नहीं है। मेरे लिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि भी नहीं है। मैं तो केवल चिदानन्दरूप शिवहूँ, शिवहूँ॥ ३ ॥

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं
न मंत्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ४ ॥

भावार्थः—पुण्य पाप, सुख दुःख, मंत्र, तीर्थ, वेद और यज्ञ आदि सब मेरे लिये नहीं हैं। मैं न भोजन हूँ, न भोज्य हूँ और न भोक्ता हूँ किन्तु चिदानन्दरूप शिवहूँ, शिवहूँ ॥ ४ ॥

न मे मृत्युशंका न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता न जन्म।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्य-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ५ ॥

भावार्थः—मुझे मृत्युका भय नहीं है, न मेरा जातिभेद है, न पिताहै न माताहै, न जन्महै, न मरणहै, न बन्धुहै, न मित्रहै, और न गुरुहै, न शिष्यहै, अतः मैं चिदानन्दरूप शिवहूँ, शिवहूँ ॥ ५ ॥

अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो
विभुर्व्याप्य सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणि।
सदा मे समत्वं न मुक्तिर्न बन्ध-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ६ ॥

भावार्थः—मैं (शुद्धात्मा) निर्विकल्प और निराकार विभुस्वरूप हूँ तथा सर्वत्र सब इन्द्रियोंमें व्याप्त हूँ। मुझमें सदा समताभाव रहताहै। बंध और मोक्ष मेरे लिये नहीं है अतः मैं चिदानन्दस्वरूप शिवहूँ, शिवहूँ ॥ ६ ॥

इति संक्षिप्तभाषाटीकासहितं श्रीमच्छङ्कराचार्य-
विरचितं आत्मपञ्चकस्तोत्रं सम्पूर्णम्

---

६ अथ श्रीआत्मचिन्तनम्

॥ अहं ब्रह्मास्मीत्यनुभवं वदति शिष्यः ॥

'मैं ब्रह्म हूँ' इस आत्मानुभवका शिष्य वर्णन करता हैः—

॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

अहमेव परं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययम् ।
इति स्यान्निश्चयान्मुक्तो बद्ध एवान्यथा भवेत् ॥ १ ॥

भावार्थः—"वासुदेव नामवाला अव्यय (घटने बढ़ने से रहित) परब्रह्म मैं ही हूँ"—ऐसा निश्चय करने से मुक्त होगा, अन्यथा संसार में बँधा ही रहेगा ॥ १ ॥

अहमेव परं ब्रह्म न चाहं ब्रह्मणः पृथक् ।
इत्येवं समुपासीत ब्राह्मणो ब्रह्मणि स्थितः ॥ २ ॥

भावार्थः—"मैं ही परब्रह्म हूँ, मैं ब्रह्म से पृथक् नहीं हूँ"—इस प्रकार ब्रह्म में स्थित ब्राह्मण (ब्रह्म होने का इच्छावाला मुमुक्षु) विचारकरता हुआ सम्यक् (भली प्रकार से) उपासना करे ॥ २ ॥

अहमेव परं ब्रह्म निश्चितं चित्त चिंत्यताम् ।
चिद्रूपत्वादसङ्गत्वादबाध्यत्वात्प्रयत्नतः ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे चित्त! चिद्रूप, असंग और प्रयत्नद्वारा अबाध्य होने के कारण "मैं ही परब्रह्म निश्चित हूँ" इस प्रकार तू चिन्तन कर ॥ ३ ॥

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं चैतन्यं च निरन्तरम् ।
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा कथं वर्णाश्रमी भवेत् ॥ ४ ॥

भावार्थः—सब उपाधियों से रहित, चैतन्य और निरन्तर (भेदरहित) ब्रह्म मैं ही हूँ—ऐसा जान लेनेपर किस प्रकार वर्णाश्रमी हो सकता है? (किसी प्रकार भी नहीं हो सकता) ॥ ४ ॥

अहं ब्रह्मास्मि यो वेद स सर्वं भवति त्विदम् ।
नाभूत्या ईशते देवास्तस्यात्मैषां भवेद्धि सः ॥ ५ ॥

भावार्थः—"मैं ब्रह्म हूँ" इस प्रकार जो जानता है, वह सर्व (सर्वात्मा) हो जाता है। उसका नाश करने में देवता भी समर्थ नहीं हैं। वह ज्ञानी देवताओंका भी आत्मा होता है ॥ ५ ॥

अन्योऽसावहमन्योऽस्मीत्युपास्ते योऽन्यदेवताम् ।
न स वेद नरो ब्रह्म स देवानां यथा पशुः ॥ ६ ॥

भावार्थः—"यह अन्य है, मैं अन्य हूँ" इस प्रकार विचार करता हुआ जो व्यक्ति अन्य (अपने से भिन्न) देवता की उपासना करता है वह मनुष्य ब्रह्म को नहीं जानता है, किन्तु वह देवताओं के पशु के समान रहता है ॥ ६ ॥

अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं निर्विकल्पस्वभाववान् ॥ ७ ॥

भावार्थः—मैं देव हूँ, अन्य नहीं हूँ, मैं ब्रह्म ही हूँ, शोकातुर नहीं हूँ किन्तु मैं निर्विकल्पस्वभाववाला सच्चिदानन्दरूप (ब्रह्म) हूँ ॥ ७ ॥

आत्मानं सततं ब्रह्म संभाव्य विहरन्ति ये ।
न तेषां दुष्कृतं किंचिद्दुष्कृतोत्था न चापदः ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो व्यक्ति आत्मा को निरन्तर ब्रह्मरूप जानकर विचरण करते हैं उनको किसी भी प्रकार का दुष्कृत (पाप) नहीं लगता और पापों से उत्पन्न हुई आपत्तियां भी नहीं सतातीं ॥ ८ ॥

आत्मानं सततं ब्रह्म संभाव्य विहरेत्सुखम् ।
संसारे गतसारे यस्तस्य दुःखं न जायते ॥ ९ ॥

भावार्थः—जो पुरुष आत्मा को निरन्तर ब्रह्मरूप जानकर सुखपूर्वक विचरण करता है उसको इस असार संसार में किसी भी प्रकार का दुःख नहीं होता ॥ ९ ॥

क्षणं ब्रह्माहमस्मीति यः कुर्यादात्मचिन्तनम् ।
स महापातकं हन्यात्तमः सूर्योदयो यथा ॥ १० ॥

भावार्थः—"मैं ब्रह्म हूँ" इस प्रकार जो क्षणमात्र भी—आत्मचिन्तन करता है वह इस प्रकार महान् पापों का नाश कर देता है जैसे सूर्य का उदय अन्धकार का (नाश कर देता है)॥ १० ॥

अज्ञानाद्ब्रह्मणो जातमाकाशं बुद्बुदोपमम् ।
आकाशाद्वायुरुत्पन्नो वायोस्तेजस्ततः पयः ।
अम्भसः पृथिवी जाता ततो व्रीहियवादिकम् ॥ ११ ॥

भावार्थः—ब्रह्म के अज्ञान से बुद्बुद की उपमावाला आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल, जल से पृथ्वी और पृथ्वी से अन्न उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥

पृथिव्यप्सु पयो वह्नौ वह्निर्वायौ नभस्यसौ ।
नभोऽप्यव्याकृते तच्च शुद्धे शुद्धोऽस्म्यहं हरिः ॥ १२ ॥

भावार्थः—पृथ्वी जलमें, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश अव्याकृत (अज्ञान) में, और वह अज्ञान शुद्ध में कल्पित है। वह शुद्ध हरि मैं हूँ ॥ १२ ॥

अहं विष्णुरहं विष्णुरहं विष्णुरहं हरिः ।
कर्तृभोक्त्रादिकं सर्वं तदविद्योत्थमेव च ॥ १३ ॥

भावार्थः—मैं विष्णु हूँ, मैं विष्णु हूँ, मैं विष्णु हूँ और मैं हरि हूँ। कर्ताभोक्तादिक सब उसकी उपाधि से उत्पन्न हुए हैं ॥ १३ ॥

अच्युतोऽहमनंतोऽहं गोविन्दोऽहमहं हरिः ।
आनन्दोऽहमशेषोऽहमजोऽहममृतोऽस्म्यहम् ॥ १४ ॥

भावार्थ—मैं अच्युत हूँ, अनन्त हूँ, गोविन्द हूँ, हरि हूँ, आनन्दरूप हूँ, अशेष हूँ, अजन्मा हूँ, और अमृतरूप हूँ ॥ १४ ॥

नित्योऽहं निर्विकल्पोऽहं निराकारोऽहमव्ययः ।
सच्चिदानन्दसंदोहः पररूपोऽस्म्यहं सदा ॥ १५ ॥

भावार्थः—मैं नित्य हूँ, निर्विकल्प हूँ, निराकार हूँ, और अव्यय, सत्, चित्, तथा आनन्दका समूह परब्रह्मरूप (सदा) मैं हूँ ॥ १५ ॥

ब्रह्मैवाहं न संसारी मुक्तोऽहमिति भावयेत् ।
अशक्नुवन् भावयितुं वाक्यमेतत् सदाभ्यसेत् ॥ १६ ॥

भावार्थः—मैं ब्रह्मही हूँ, संसारी नहीं हूँ । मैं मुक्त हूँ—ऐसी भावना करनी चाहिये । भावना करनेमें असमर्थ होने पर मनुष्यको सदा इसबातका अभ्यास करना चाहिये ॥ १६ ॥

ध्यानयोगेनैकमासाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
षण्मासाभ्यासयोगेन सर्वं पापं व्यपोहति ॥ १७ ॥

भावार्थः—एक मासके ध्यानयोग से साधक ब्रह्महत्याको दूर कर सकताहै, और छः मासके अभ्यासयोगसे पापों की निवृत्ति होती है ॥ १७ ॥

संवत्सरकृताभ्यासात्सिद्ध्यष्टकमवाप्नुयात् ।
यावज्जीवं सदाभ्यासाज्जीवन्मुक्तो न संशयः ॥ १८ ॥

भावार्थः—एक संवत्सर (वर्ष) पर्यन्त अभ्यास करनेसे साधक अणिमादि अष्ट सिद्धियोंको प्राप्त करताहै और जीवनपर्यन्त सदा अभ्यास करनेसे जीवन्मुक्त हो जाताहै, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १८ ॥

नाहं देहो न च प्राणो नेन्द्रियाणि तथैव च
न मनोऽहं न बुद्धिश्च नैव चित्तमहंकृतिः ॥ १९ ॥

भावार्थः—मैं देह नहीं हूँ, प्राण नहीं हूँ इन्द्रियाँ नहीं हूँ, तथा मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार भी नहीं हूँ ॥ १९ ॥

नाहं पृथ्वी न सलिलं न च वह्निस्तथानिलः ।
न चाकाशो न शब्दश्च न च स्पर्शस्तथा रसः ॥ २० ॥

भावार्थः—मैं पृथ्वी नहीं हूँ, जल नहीं हूँ, अग्नि तथा वायु नहीं हूँ, आकाश नहीं हूँ और शब्द, स्पर्श तथा रस भी नहीं हूँ ॥ २० ॥

नाहं गन्धो न रूपं च न मायाहं न संसृतिः ।
सदा साक्षिस्वरूपत्वाच्छिव एवास्मि केवलम् ॥ २१ ॥

भावार्थः—मैं गन्ध नहीं हूँ, रूप नहीं हूँ, माया और सृष्टि भी नहीं हूँ। मैं तो सदा साक्षीस्वरूप होनेसें केवल शिव ही हूँ ॥ २१ ॥

अकर्ताहमभोक्ताहमसंगः परमेश्वरः ।
सदा मत्सन्निधानेन चेष्टते सर्वमिन्द्रियम् ॥ २२ ॥

भावार्थः—मैं अकर्ता हूँ, अभोक्ता हूँ और सदा संग से रहित परमेश्वर हूँ। मेरे ही सन्निधान से सब इन्द्रियां कार्य करती हैं ॥ २२ ॥

आदिमध्यान्तमुक्तोऽहं न बद्धोऽहं कदाचन ।
स्वभावनिर्मलः शुद्धः स एवाहं न संशयः ॥ २३ ॥

भावार्थः—मैं आदि, मध्य और अन्त से रहित हूँ तथा किसीभी प्रकार से बद्ध नहीं हूँ। जो (ब्रह्म) स्वभावसे निर्मल और शुद्ध है वही (ब्रह्म) मैं हूँ, इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ २३ ॥

सर्वज्ञोऽहमनन्तोऽहं सर्वगः सर्वशक्तिमान् ।
आनन्दः सत्यबोधोऽहमिति ब्रह्मानुचिन्तनम् ॥ २४ ॥

भावार्थः—"मैं सर्वज्ञ हूँ अनंत हूँ सर्वगत सर्वशक्तिमान् और सत्यबोधरूप हूँ" सर्वदा इसी प्रकार के विचार में मग्न रहनेका ही नाम ब्रह्मचिन्तन कहा गया है ॥ २४ ॥

अयं प्रपञ्चो मिथ्यैव सत्यं ब्रह्माहमद्वयम् ।
अत्र प्रमाणं वेदान्ता गुरवोऽनुभवस्तथा ॥ २५ ॥

भावार्थः—यह सब प्रपञ्च मिथ्या है और मैं सत्य तथा अद्वय ब्रह्म हूँ। इस विचार की पुष्टि करनेके लिये वेदान्त (उपनिषद्) गुरुवाक्य तथा अपना अनुभव प्रमाण हैं ॥ २५ ॥

मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम् ॥ २६ ॥

भावार्थः—मुझसे सबकी उत्पत्ति होती है मुझसे ही सब की स्थिति (पालन) है और मुझमें ही सब लयको प्राप्त होते हैं-मैं ही ऐसा अद्वय ब्रह्म हूं ॥ २६ ॥

ब्रह्मैवाहं न संसारी न चाहं ब्रह्मणः पृथक् ।
नाहं देहो न मे देहः केवलोऽहं सनातनः ॥ २७ ॥

भावार्थः—मैं ब्रह्म ही हूँ, संसार के बन्धनों में बन्धाहुआ जीव नहीं हूँ और ब्रह्म से पृथक् कभी नहीं हूँ । मैं देह नहीं हूँ और देह मेरे नहीं है । मैं तो केवल और सनातन ब्रह्मस्वरूप हूँ ॥ २७ ॥

॥ इति संक्षिप्तभाषाटीकासहितं श्रीमदात्मचिन्तनं समाप्तम् ॥

अथ निर्वाणदशकम् (सिद्धान्तबिन्दुः)

॥ भुजङ्गप्रयातं छन्दः ॥

न भूमिर्न तोयं न तेजो न वायु-
र्न खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः ।
अनैकान्तिकत्वात्सुषुप्त्येकसिद्ध-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ १ ॥

भावार्थः—मैं (शुद्धात्मा) भूमि नहीं हूँ, जल नहीं हूँ, तेज नहीं हूँ, वायु नहीं हूँ, आकाश नहीं हूँ, इन्द्रिय नहीं हूँ और न इनका समूह हूँ । इन सबमें व्यभिचारीभाव होने के कारण यह सब मैं नहीं हूँ किन्तु मैंतो सुषुप्तिअवस्था में सिद्ध (अनुभवरूप) एक अवशिष्ट केवल शिवरूप हूँ ॥ १ ॥

न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा
न मे धारणाध्यानयोगादयोपि ।

अनात्माश्रयाऽहंममाध्यासहानात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ २ ॥

भावार्थः—मेरे (शुद्धात्माके) वर्ण नहीं है और वर्णाश्रम के आचार व धर्म तथा धारणा और ध्यान, योग आदि भी नहीं हैं। मैं अनात्मरूप आश्रयवाले अहं ममाध्यास की निवृत्तिवाला एक अवशिष्ट केवल शिवरूप हूँ ॥ २ ॥

न माता पिता वा न देवा न लोका
न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति।
सुषुप्तौ निरस्तातिशून्यात्मकत्वात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ३ ॥

भावार्थः—मैं माता नहीं हूँ, पीता नहीं हूँ, देव, लोक, वेद, यज्ञ और तीर्थ नहीं हूँ। विद्वान् कहते हैं कि सुपुप्ति में निरस्त और अतिशून्य होने से एक अवशिष्ट केवल हूँ और शिवरूप हूँ ब्रह्म में ही हूँ ॥ ३ ॥

न सांख्यं न शैवं न तत्पांचरात्रम्
न जैनं न मीमांसकादेर्मतं वा।
विशिष्टानुभूत्या विशुद्धात्मकत्वात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ४ ॥

भावार्थः—मैं सांख्यमत नहीं हूँ, शैवमत नहीं हूँ, पाञ्चरात्र, जैन तथा मीमांसकादि का भी मत नहीं हूँ। श्रेष्ठ अनुभव द्वारा विशुद्धरूप होने से मैं एक अवशिष्ट केवल शिवरूप हूँ ॥ ४ ॥

न चोर्ध्वं न चाधो न चान्तर्न वाह्यम्
न मध्यं न तिर्यङ् न पूर्वापरा दिक्।
वियद्व्यापकत्वादखण्डैकरूप-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ५ ॥

भावार्थः—मैं ऊपर नहीं हूँ, नीचे नहीं हूँ, अन्दर नहीं हूँ बाहर नहीं मध्य और टेढ़ा नहीं हूँ। पूर्व और पश्चिमादिक दिशाये मेरी नहीं हैं। आकाशके समान व्यापक होने से मैं अखण्ड एकरूप हूँ और उसी कारणसे मैं एक अवशिष्ट केवल हूँ और शिवरूप हूँ ॥ ५ ॥

न शुक्लं न कृष्णं न रक्तं न पीतं
न कुब्जं न पीनं न ह्रस्वं न दीर्घम्।
अरूपं तथा ज्योतिराकारकत्वात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ६ ॥

भावार्थ—मैं सफेज नहीं हूँ, काला नहीं हूँ, लाल नहीं हूँ, पीला नहीं हूँ, कुवडा नहीं हूँ। न मोटा हूँ न छोटा हूँ, न लम्बा हूँ न अरूप हूँ। मैं ज्योति (प्रकाश) रूप आकार वाला होनेसे एक अवशिष्ट केवल हूँ तथा शिवरूप हूँ ॥ ६ ॥

न शास्ता न शास्त्रं न शिष्यो न शिक्षा
न च त्वं न चाहं न चायं प्रपञ्चः।
स्वरूपावबोधो विकल्पासहिष्णु-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ७ ॥

भावार्थः—शास्ता (शासन करने वाला) मैं नहीं हूँ, शास्त्र नहीं हूँ, शिष्य और शिक्षा नहीं हूँ। तूँ नहीं हूँ, मैं नहीं हूँ और यह प्रपञ्च नहीं है। अतएव निजस्वरूप ज्ञानरूप तथा विकल्प को न सहने वाला मैं एक अवशिष्ट केवल शिवरूप हूँ ॥ ७ ॥

न जाग्रन्न मे स्वप्नको वा सुषुप्ति-
र्न विश्वो न वा तैजसः प्राज्ञको वा।
अविद्यात्मकत्वात्त्रयाणां तुरीय-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ८ ॥

भावार्थः—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीनों अवस्था यें मेरी नहीं

है। विश्व, तैजस् और प्राज्ञ यह तीनों भी अविद्यास्वरूप होनेसे यह भी मैं नहीं हूँ। मैं तो तुरीय नाम एक अवशिष्ट केवल शिवरूप हूँ ॥ ८ ॥

अपि व्यापकत्वाद्धि तत्त्वप्रयोगात्
स्वतःसिद्धभावादनन्याश्रयत्वात्।
जगत्तुच्छमेतत्समस्तं तदन्यत्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ९ ॥

भावार्थ—ब्रह्म सर्वव्यापक है, प्रसिद्धतत्त्वशब्दद्वारा उच्चारित है तथा स्वतःसिद्धसत्तावाला और अन्य आश्रय से रहित है। ब्रह्म से भिन्न यह समस्त जगत् तुच्छ है अतः मैं एक अवशिष्ट केवल शिवरूप हूँ ॥ ९ ॥

न चैकं तदन्यद्द्वितीयं कुतः स्यात्
न वा केवलत्वं न चाकेवलत्वम्।
न शून्यं न चाशून्यमद्वैतकत्वात्
कथं सर्ववेदान्तसिद्धं ब्रवीमि ॥ १० ॥

भावार्थः—जब एक नहीं है दूसरा कहाँ से हो सकताहै? जब केवल भाव नहीं है तो अकेवल भाव भी नहीं है और जब शून्य नहीं है तो अशून्य भी नहीं है इसलिये अद्वैतरूप होनेसे उसका (ब्रह्मका) सब वेदान्तमतोंद्वारा किस प्रकार वर्णन किया जाय ॥ १० ॥

॥ इति भावार्थसहितं श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं
निर्वाणदशकं समाप्तम् ॥

---

८ अथ चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम्

दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः ॥

भज गोविन्दं भज गोविन्दं
गोविन्दं भज मूढमते ।
प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि
नहि रक्षति डुकृञ् करणे ॥ १ ॥

भावार्थ—भगवति प्रकृति देवी का प्रबल चक्र चल रहा है । इसमें दिन होता है, रात्रि होती है, सायं काल तथा प्रातः काल होता है और शिशिर वसन्त आदि ऋतुओंका भी आगमन होता है । इस प्रकार काल अपनी गति से चल हुआ खेल कररहा है और साथ ही हमारी आयुभी बीतती जाती है तिसपर भी हमलोग आशारूपी वायुके चक्कर में आकर इधर उधर भटकते फिरते हैं उसको छोडते नहीं हैं । अतः गुरु उपदेश करता है कि हे मूर्ख, इस मिथ्या आशा को छोड़कर गोविन्द का भजन कर । यदि तू गोविन्द को नहीं भजेगा तो मरणकाल समीप आनेपर 'डुकृञ् करणे' आदि सूत्र तेरी रक्षा नहीं कर सकेंगे ॥ १ ॥

अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू रात्रौ चिबुकसमर्पितजानुः ।
करतलभिक्षा तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः ॥
भज गोविन्दं भज० ॥ २ ॥

भावार्थ—शीतकाल में प्रातःकाल ठण्ड दूर करने के लिये सन्मुख अग्नि रक्खी है और पृष्ठभाग में सूर्य से गर्मी ले रहे हैं और रात्रि के समय शीत के मारे घुटनों के बीच शिर दबाकर बैठे हैं, भिक्षा मागकर खाते हैं, और गृह न होने से वृक्षके नीचे निवास करते हैं ऐसी दशा होने पर भी आशारूपी पाश (बन्धन) को तोड़कर गोविन्द का भजन नही करते । हे मूर्ख, यदि मुक्ति प्यारी है तो आशाको छोड़ दो । तुमसे वारम्वार यही निवेदन है कि गोविन्द का भजन करो ॥ २ ॥

यावद्वित्तोपार्जनसक्तस्तावन्निजपरिवारो रक्तः ।
पश्चाद्धावति जर्जरदेहे वार्तां पृच्छति कोऽपि न गेहे ॥
भज गोविन्दं भज० ॥ ३ ॥

भावार्थ—जबतक धन कमाने की शक्ति है तबतक परिवारके लोग भी प्रेम करते हैं परन्तु जब वृद्धावस्था आनेपर शरीर जीर्ण और दुर्बल होजाता है तब घर में कोई बात भी नहीं पूछता अतः हे मूर्ख! यह सब माया प्रपञ्च छोड़कर गोविन्दका भजन कर ॥ ३ ॥

जटिलो मुण्डी लुञ्चितकेशः काषायाम्बरबहुकृतवेषः ।
पश्यन्नपि नहि पश्यति मूढ़ उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः ॥
भज गोविन्दं भज० ॥ ४ ॥

भावार्थ—सिर घुटा हुआ है, दाढ़ी के केश लुचे हुए हैं, नानाप्रकार के गेरुए वस्त्र पहने हुए हैं किन्तु इस संसार को देखताहुआ भी अन्धे की तरह नानाप्रकार के रूप बनाकर पेट ही भरा करता है—हे मूर्ख। यह पेटका पचड़ा छोड़कर गोविन्दका भजन कर ॥ ४ ॥

भगवद्गीता किञ्चिदधीता गङ्गाजललवकणिका पीता ।
सकृदपि यस्य मुरारिसमर्चा तस्य यमोऽपि न कुरुते चर्चां ॥
भज गोविन्दं भज० ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिस पुरुषने थोड़ीसी गीता पढ़ी हो, गङ्गा जल के एक कण का भी पान किया हो और एकवार भी भगवान की पूजा की हो तो उसकी यमराज कभी चर्चा नहीं करते अतः हे मूर्ख! तू गोविन्द का भजन कर ॥ ५ ॥

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ॥
भज गोविन्दं भज ॥ ६ ॥

भावार्थ—अङ्ग गल गया है, बाल पक गये है, मुखमें एक भी दान्त नहीं रहा, वृद्धावस्था आगई है, लकड़ी के सहारे चलते हैं तिसपर भी आशा नहीं छूटती। मूर्ख, इस आशा को छोड़कर गोविन्द का भजन कर ॥ ६ ॥

वालस्तावत्क्रीडासक्तस्तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः । वार के
वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः परे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः ॥
भज गोविन्दं भज० ॥ ७ ॥

भावार्थ—वाल्यावस्था खेलने में वितायी, युवावस्था में स्त्री में आसक्त रहे, वृद्धावस्था में चिन्ताने घेरलिया परब्रह्म में चित नहीं लगा अतः हे मूर्ख ! अब तो गोविन्द का भजन कर ॥ ७ ॥

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम् ।
इह संसारे खलु दुस्तारे कृपया पारे पाहि मुरारे ॥
भज गोविन्दं भज० ॥ ८ ॥

भावार्थ—बार बार जन्म और मरण हुआ तथा बार बार माताके गर्भ में शयन करना पड़ा परन्तु इस दुस्तर (कठिनाई से पार होसकने वाले) संसार में आकर कभी यह भी नही कहा कि 'हे मुरारी ! इस जन्ममरण के दुःख से मेरी रक्षा करो' अतः हे मूर्ख ! अब गोविन्द का भजन कर ॥८॥

पुनरपि रजनी पुनरपि दिवसः पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः ।
पुनरप्ययनं पुनरपि वर्षं तदपि न मुञ्चत्याशामर्षम् ॥
भज गोविन्दं भज० ॥ ९ ॥

भावार्थ—लगातार दिन, रात, पक्ष महिने, उत्तरायण, दक्षिणायन तथा वर्ष व्यर्थ चले जारहे हैं तब आशा और द्वेष नहीं छूटते। हे मूर्ख ! इस मायाजालको छोड़ कर गोविन्दका भजन कर ॥ ९ ॥

वयसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः ।
नष्टे वित्ते कः परिवारो ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः ॥
भज गोविन्दं भज० ॥ १० ॥

भावार्थ—जैसे युवाकाल वीतनेपर कामविकार, जल सूखने पर सरोवर और धन न रहने पर परिवार सब निष्फल है उसी प्रकार तत्त्वज्ञान होजाने पर

भार यानिर्मित संसार तुच्छ प्रतीत होता है अतः हे मूर्ख इस मिथ्या
— छोड़ कर तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिये गोविन्दका भजन कर ॥ १० ॥

नारीस्तनभरनाभिनिवेशं मिथ्यामायामोहावेशम् ।
एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचारय वारंवारम् ॥
भज गोविन्दं भज० ॥ ११ ॥

भावार्थ—कामिनियोंके उन्नत स्तनों और नाभि प्रदेश को, तथा माया-मय वेश को देखकर मुग्ध मत होओ किन्तु मनमें वारंवार ऐसा विचार करो कि यह सब माँसका विकृत रूप है। ऐसा विचार कर भ्रमको छोड़ दो और गोविन्द का भजन करो ॥ ११ ॥

कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः का मे जननी को मे तातः ।
इति परिभावय सर्वमसारं त्यक्त्वा विश्वं स्वप्नविचारम् ॥
भज गोविन्दं भज० ॥ १२ ॥

भावार्थ—तुम कौन हो, मैं कौन हूँ, कहाँसे आया, कौन मेरी माता है और कौन पिता है इन सब झूटे विचारों को तथा संसार को असार और स्वप्नवत् समझ कर उसका त्याग करो और गोवन्दका भजन करो ॥ १२ ॥

गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम् ।
नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम् ॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं० ॥ १३ ॥

भावार्थ—हजारो वार गीता का पाठ करो, निरन्तर भगवान के रूप का ध्यान करो, सज्जन पुरुषों की संगति करो, दीन दुःखियों की धन से सहायता करो और गोविन्द के नाम का भजन करो इससें कल्याण है ॥१३॥

यावज्जीवो निवसति देहे कुशलं तावत्पृच्छति गेहे ।
गतवति वायौ देहापाये भार्या बिभ्यति तस्मिन्काये ॥
भज गोविन्दं भज० ॥ १४ ॥

भावार्थ—जबतक शरीर में प्राण रहताहै तभीतक घरमें परिवार के लोग कुशल समाचार पूछते हैं किन्तु जब प्राण शरीरसे निकल जाता है तो उस मृत काया को देख कर स्त्री भी डरती है और जिस देह का प्रेम से आलिङ्गन करती थी उसके समीप जानेमें भय खातीहै अतः हे मूर्ख! गोविन्द का भजन कर ॥ १४ ॥

सुखतः क्रियते रामाभोगः पश्चाद्धन्तशरीरे रोगः।
यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुञ्चन्ति पापाचरणम्॥
भज गोविन्दं भज० ॥ १५ ॥

भावार्थ—सुखकी इच्छा से स्त्री के साथ विषय भोग करते हो परन्तु दुःख की बात है कि अन्तमें शरीर सुख न पाकर व्याधिसे पीड़ित होजाता है। यह जानते हो कि इस संसार में आकर मरना निश्चय है फिरभी पाप करना नही छोड़ते। हे मूर्ख! पाप से मुख मोड़ो और गोविन्द से प्रीति जोड़ो ॥ १५ ॥

रथ्याचर्पटविरचितकन्थः पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः।
नाहं न त्वं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः॥
भज गोविन्दं भज० ॥ १६ ॥

भावार्थ—गली के कुचले हुए घास फूस की बनी हुई कन्था है, पुण्य और पाप से रहित मार्ग है, न मैं हूँ न तुम हो, और न यह संसार है फिर व्यर्थ क्यों शोक करते हो। शोक को छोड़ो और गोविन्द का भजन करो ॥ १६ ॥

कुरुते गङ्गासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम्।
ज्ञानविहीनं सर्वमनेन मुक्तिर्न भवति जन्मशतेन॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं ॥ १७ ॥

भावार्थ—चाहे गङ्गा, सागर आदिक तीर्थों की यात्रा करो, अनेक प्रकार के व्रतों का पालन करो अथवा दान दो, किन्तु यह सब होते हुए भी ज्ञान न होने पर सौ जन्म में भी मुक्ति नहीं होसकती अतएव हे मूर्ख जीव! तू

माया के सब प्रपञ्चोंको त्याग कर गोविन्द का तू भजन कर जिससे तेरा कल्याण होगा और तू जन्ममरण के बन्धन से छूटकर परम को प्राप्त होगा ॥ १७ ॥

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

अवधूताष्टकम्
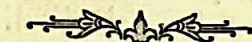
ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ परमहंस शिरोमणि–अवधूत–श्रीस्वामीशुकदेवस्तुतिः

निर्वासनं निराकांक्षं सर्वदोषविवर्जितम् ।
निरालंबं निरातंकं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ १ ॥

मैं श्रीशुकदेवजीको प्रणाम करता हूँ. जिन्हें किसीभी प्रकारकी वासना नही है, किसीभी फलकी इच्छा नहीं है, जो संपूर्ण दोषोंसे रहित है, जिनका कोई आधार नहीं है, तथा जिन्सें किसीका भय नहीं है, और जो अवधूतरूप है.

निर्ममं निरहंकारं समलोष्टाश्मकांचनम् ।
समदुःखसुखं धीरं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ २ ॥

जिन्हें किसीभी वस्तु में ममता नहीं है, जो अहंकारसे रहित है, जिन्हें लोटा, पत्थर और कांचन एक समान प्रतीत होते हैं. जिन्हें सुख और दुःख समान है. ऐसे धीर अवधूत श्रीशुक मुनिको प्रणाम करता हूं ॥ २ ॥

अविनाशिनमात्मानं ह्येकं विज्ञाय तत्त्वतः ।
वीतरागभयक्रोधं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ ३ ॥

विनाशरहित अद्वैत आत्माको यथार्थरूपसे जानकर, जिन्हें राग, भय और क्रोध नहीं है ऐसे अवधूत श्रीशुकदेवमुनिको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३ ॥

नाहं देहो न मे देहो जीवो नाहमहं हि चित् ।
एवं विज्ञाय संतुष्टं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ ४ ॥

मैं न देहरूप हूं, और न मेरी देह है, मैं जीव नहीं हूं मैं केवल चित्-रूप हूं, ऐसा समझकर जो संतुष्ट हो चुके है ऐसे श्रीअवधूत शुकमुनिको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४ ॥

समस्तं कल्पनामात्रं ह्यात्मा मुक्तः सनातनः ।
इति विज्ञाय संतुष्टं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ ५ ॥

ये संपूर्ण विश्व कल्पनामात्र है, आत्मा कल्पनासे मुक्त सनातन स्थायी नित्य है, ऐसा समझकर जो तृप्त हो चुके है ऐसे श्रीअवधूत शुकमुनिको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५ ॥

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं कामसंकल्पवर्जितम् ।
हेयोपादेयहीनं तं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ ६ ॥

ज्ञानरूपी अग्निसे जिन्हके संपूर्ण कर्म दग्ध हो चुके है, जो कामना और संकल्पसे रहित है, तथा जिन्हें किसी भी वस्तु के त्याग और ग्रहण की इच्छा नहीं है, ऐसे अवधूत श्रीशुकदेवमुनिको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ६ ॥

व्यामोहमात्रविरतौ स्वरूपादानमात्रतः ।
वीतशोकं निरायासं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ ७ ॥

स्वरूप (आत्मा) का ज्ञान हो जानेसे मोहकी निवृत्ति हो जानेपर जिन्हें किसी का शोक नहीं है, जो आयास (चेष्टा) से रहित है, ऐसे श्रीशुकदेवमुनिको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ७ ॥

आत्मा ब्रह्मेति निश्चित्य भावाभावौ च कल्पितौ ।
उदासीनं सुखासीनं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ ८ ॥

आत्मा ब्रह्म है, और भाव तथा अभाव कल्पित है, ऐसा निश्चयरूपसे समझकर जो उदासीन और सुखी है उन्हें अवधूत श्रीशुकदेवमुनिको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ८ ॥

स्वभावेनैव यो योगी सुखं भोगं न वांछति ।
यदृच्छालाभसंतुष्टं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ ९ ॥

जो योगी स्वभाव से ही सुख तथा भोगों की इच्छा नहीं करता है तथा आकस्मिक लाभसे संतुष्ट रहता है ऐसे अवधूत को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ९ ॥

नैव निन्दाप्रशंसाभ्यां यस्य विक्रियते मनः ।
आत्मक्रीडं महात्मानं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ १० ॥

जिसका मन निन्दा और प्रशंसासे विकारको प्राप्त नहीं होता है, तथा जो आत्मा में ही क्रीडा करता है ऐसे महात्मा अवधूत श्रीशुकको मैं प्रमाण करता हूं ॥ १० ॥

नित्यं जाग्रदवस्थायां स्वप्नवद्योऽवतिष्ठते ।
निश्चिन्तं चिन्मयात्मानं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ ११ ॥

जो जाग्रद् अवस्था में भी स्वप्नके समान रहता है, ऐसे चिन्तासे रहित चित्‌रूपी अवधूत श्रीशुकदेवमुनिको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ११ ॥

द्वेष्यं नास्ति प्रियं नास्ति नास्ति यस्य शुभाशुभम् ।
भेदज्ञानविहीनं तं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ १२ ॥

जिन्हकी किसी से शत्रुता नहीं है, और जिनका कोई प्रिय नहीं है, तथा शुभ और अशुभ भाव नहीं हैं, जो भेदज्ञानसे रहित है ऐसे अवधूतको मैं प्रणाम करता हूं ॥ १२ ॥

जडं पश्यति नो यस्तु जगत् पश्यति चिन्मयम् ।
नित्ययुक्तं गुणातीतं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ १३ ॥

जो संसारको जड न समझकर चिन्मय देखता है, तथा जो नित्य युक्त (सहजावस्था) है गुणों से परे है ऐसे अवधूतको मैं प्रणाम करता हूं॥ १३॥

यो हि दर्शनमात्रेण पवते भुवनत्रयम् ।
पावनं जंगमं तीर्थं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ १४ ॥

जो दर्शनमात्रसे तीनो भुवनोंको पवित्र करता है, ऐसे पवित्र करनेवाले जंगम तीर्थरूप अवधूत श्रीशुकदेवमुनिको मैं प्रणाम करता हूं ॥ १४ ॥

निष्कलं निष्क्रियं शांतं निर्मलं परमामृतम् ।
अनंतं जगदाधारं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ १५ ॥

कला और क्रियासे जो रहित है, तथा शांत, निर्मल और परम अमृत मोक्षरूप है, जिसका अंत नहीं है, जो संसारका आधार है ऐसे अवधूतको मैं प्रणाम करता हूं ॥ १५ ॥

॥ अवधूताष्टकं समाप्तम् ॥

॥ १० अथ श्रीपरमपावनप्रेमध्वनिः ॥

(श्री स्वामी निरञ्जनदेव-सरस्वतीविरचित)

जले विष्णुः स्थले विष्णुः विष्णुः पर्वतमस्तके ।
ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥

(दोहा)

सच्चित आनन्द आतमा, कृष्ण ब्रह्म भगवान ।
स्तुति अरु गायन बुध करैं, प्रेमध्वनी परमान ॥

पूजन अस्तुति वहुविधि करके प्यारा कृष्ण मनाऊँगी ॥ टेक ॥
रथ वनाय स्थूल देहको इन्द्रियन अश्व लगाऊँगी ।
साज प्राण मन करूँ सारथी बैठ कृष्ण पै जाऊँगी ॥ १ ॥ पूज० ॥
जय सर्वातम श्रुतिपथ पालक यों कहि सीस नवाऊँगी ।
दर्शन पाकर साज आरती जय जय हरि ॐ गाऊँगी ॥ २ ॥ पूज० ॥
शुद्धभाव का दीपक करके वाती शील बनाऊँगी ।
शान्ति तैल भरूँ सप्रीति ब्रह्माऽहं ज्योति जगाऊँगी ॥ ३ ॥ पूज० ॥
लोक लाज कि धूप दिखाऊँ समताथाल सजाऊँगी ।
दया पुष्प अरु कुम कुम प्रीति विनय शिवोहं गाऊँगी ॥ ४ ॥ पू० ॥
काम क्रोध मदमोह लोभ का जा नैवेद्य चढाऊँगी ।
दीनदयाल जगत के स्वामी 'पाहि माम्' करि ध्याऊँगी ॥ ५ ॥ पू० ॥

ध्रुव प्रह्लादकी रक्षा कीन्ही मैं अब कित बल जाऊँगी।
गजराजाके बन्धन काटे द्रौपदि लाज जिताऊँगी ॥ ६ ॥ पूज० ॥
प्रेमाकर्षण करके नीमें खींच कृष्ण को लाऊँगी।
याते मिलि है प्रमाणपियारा नहिं तो प्राण गमाऊँगी ॥ ७ ॥ पू० ॥
होइ दयाल दरश प्रभु दीजै मैं आतम सुख पाऊँगी।
तुझ बिन है प्रभु कौन हमारा रो रो विनय सुनाऊँगी ॥ ८ ॥ पू० ॥
कर्ता हर्ता हो जगपालक छोड़ तुम्हें कित जाऊँगी।
पतितउधारण नाम तुम्हारा यों कहि विनय सुनाऊँगी ॥ ९ ॥ पू० ॥
ममता मोह निवारो मेरा मैं तुमपर बलि जाऊँगी।
वां गार्गी निर्भय कीजे गुणावाद प्रभु गाऊँगी ॥ १० ॥ पूजन० ॥
सन्तसमागमनी मैं करके, मिथ्याभाव भुलाऊँगी।
अस्तिभाति है प्रियवर प्यारा ताको कण्ठ लगाऊँगी ॥ ११ ॥ पूज० ॥
नामरूप की भेंट कल्पना, सर्व ब्रह्म यह ध्याऊँगी।
जन्म मरण के संशय मेटूँ जाय परमपद पाऊँगी ॥ १२ ॥ पूज० ॥
पुण्य पाप दो ईन्धन जोई अग्नि ज्ञान जलाऊँगी।
भस्म बनाय लगाऊँ तन को शङ्कररूप दिखाऊँगी ॥ १३ ॥ पूज० ॥
ओम नाद मैं लेकर अपने बैठि कैलाश बजाऊँगी।
एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति ऊँची कूक सुनाऊँगी ॥ १४ ॥ पूज० ॥
सोऽहं हंसो डमरू बाजे आनन्द मङ्गल गाऊँगी।
भेदाभेद की त्याग कल्पना ब्रह्मानन्द सुख पाऊँगी ॥ १५ ॥ पू० ॥
बाम रु शुक ज्यों दत्त दिगम्बर तैसे काल विताऊँगी।
ज्ञान विराग धरूँ दृढ़ मन में मैं ब्रह्म पदवी पाऊँगी ॥ १६ ॥ पू० ॥
जन्म सफल तब होय हमारा ब्रह्मज्ञान जब पाऊँगी।
जगत वासना तजके सगरी ब्रह्मलीन हो जाऊँगी ॥ १७ ॥ पूज० ॥
अर्ज हमारी खुशी तुम्हारी बारम्बार सुनाऊँगी।
कृष्ण निरञ्जन भवदुःख भञ्जन, हरिहर देव मनाऊँगी ॥ १८ ॥ पू० ॥
मिटी वासना ज्ञान भयो जब सोऽहं हंसो गाऊँगी।
आठ पहर आतम रङ्गराती शिवोऽहं ध्वनी लगाऊँगी ॥१९॥ पूज० ॥
अन्तर बाहिर पूरण स्वामी, ऊरण भाव भुलाऊँगी।
पञ्चकोश देह त्रय न्यारा ब्रह्मातम चित लाऊँगी ॥ २० ॥

सर्वं ब्रह्म यह दृष्टि हमारी, झगड़ा भेद मिटाऊँगी।
केवल देव निरञ्जन प्यारा ब्रह्मैवाहं ध्याऊँगी ॥ २१ ॥ पूजन० ॥

(दोहा)

प्रेमध्वनी यह सार है, जो कोइ पढ़े सुजान।
कहत निरञ्जन देवयति, आनन्द लहैं महान ॥

॥ इति श्रीमदलौकिकपरमपावनप्रेमध्वनिः समाप्तः ॥

हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

---

११ ब्रह्मज्ञानावली

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॐतत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

सकृच्छ्रवणमात्रेण ब्रह्मज्ञानं यतो भवेत्।
ब्रह्मज्ञानावलीमाला सर्वेषां मोक्षसिद्धये ॥ १ ॥
असंगोऽहमसंगोऽहमसंगोऽहं पुनः पुनः।
सच्चिदानंदरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ २ ॥
नित्यशुद्धविमुक्तोऽहं निराकारोऽहमव्ययः।
भूमानंदस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ ३ ॥
नित्योऽहं निरवद्योऽहं निराकारोऽहमच्युतः।
परमानंदरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ ४ ॥
शुद्धचैतन्यरूपोऽहमात्मारामोऽहमेव च।
अखंडानंदरूपोऽहमहमे० ॥ ५ ॥
प्रत्यक्चैतन्यरूपोऽहं शांतोऽहं प्रकृतेः परः।
शाश्वतानंदरूपोऽहमहमे० ॥ ६ ॥
तत्त्वातीतः परात्माहं मध्यातीतः परः शिवः।
मायातीतः परंज्योतिरहमे० ॥ ७ ॥
नामरूपव्यतीतोऽहं चिदाकारोऽहमच्युतः।
सुखरूपस्वरूपोऽहमहमे० ॥ ८ ॥

मायातत्कार्यदेहादि मम नास्त्येव सर्वदा ।
स्वप्रकाशैकरूपोऽहमहमे० ॥ ९ ॥
गुणत्रयव्यतीतोऽहं ब्रह्मादीनां च साक्ष्यहम् ।
अनंतानंदरूपोऽहमहमे० ॥ १० ॥
अंतर्यामिस्वरूपोऽहं कूटस्थः सर्वगोऽस्म्यहम् ।
परमात्मस्वरूपोऽहमहमे० ॥ ११ ॥
निष्कलोऽहं निष्क्रियोऽहं सर्वात्माद्यः सनातनः ।
अपरोक्षस्वरूपोऽहमहमे० ॥ १२ ॥
द्वंद्वादिसाक्षिरूपोऽहमचलोऽहं सनातनः ।
सर्वसाक्षिस्वरूपोऽहमहमे० ॥ १३ ॥
प्रज्ञानघन एवाहं विज्ञानघन एव च ।
अकर्ताहमभोक्ताऽहमहमे० ॥ १४ ॥
निराधारस्वरूपोऽहं सर्वाधारोऽहमेव च ।
आप्तकामस्वरूपोऽहमहमे० ॥ १५ ॥
तापत्रयविनिर्मुक्तो देहत्रयविलक्षणः ।
अवस्थात्रयसाक्ष्यस्मि चाहमेवा० ॥ १६ ॥
दृक्दृश्यौ द्वौ पदार्थौ स्तः परस्परविलक्षणौ ।
दृक् ब्रह्म दृश्यं मायेति सर्ववेदांतडिंडिमः ॥ १७ ॥
अहं साक्षीति यो विद्याद्विविच्यैवं पुनः पुनः ।
स एव मुक्तः सो विद्वानिति वेदांतडिंडिमः ॥ १८ ॥
घटकुड्यादिकं सर्वं मृत्तिकामात्रमेव च ।
तद्वद्ब्रह्म जगत्सर्वमिति वेदांतडिंडिमः ॥ १९ ॥
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ।
अनेन वेद्यं सच्छास्त्रमिति वेदांतडिंडिमः ॥ २० ॥
अंतर्ज्योतिर्बहिर्ज्योतिः प्रत्यग्ज्योतिः परात्परः ।
ज्योतिर्ज्योतिः स्वयंज्योतिरात्मज्योतिः शिवोऽस्म्यहम् ॥२१॥ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्य-
विरचिता ब्रह्मज्ञानावली समाप्ता ॥